राजस्थान राज्य

बनाम

रोहिताश व अन्य

आपराधिक अपील संख्या 361/2008

22 फरवरी, 2008

(डा. अरिजीत पसायत और पी.सदाशिवम,जे.जे.)

दण्ड प्रक्रिया संहिता,1973-धारा 378(1)-

दोषमुक्ति अन्तर्गत धारा 498-ए और 304-बी भारतीय दंड संहिता- अपील पेश करने की अनुमति हेतु प्रार्थना पत्र निरस्त- अपील में निर्धारित किया गया कि "बिना कारण बताये अपील पेश करने की अनुमति प्रदान नहीं करना संपोषणीय नहीं है। मामला उच्च न्यायालय को प्रेषित किया गया। भारतीय दण्ड संहिता 1860 अन्तर्गत धारा 498-ए और 304-बी निर्णय- कारणों का अभिलिखित किया जाना- चर्चा की आवश्यकता नजीरे- निर्धारित- उच्चतम न्यायालय की कानूनी घोषणा बाध्यकारी है, जिसे किसी भी प्राधिकरण या न्यायालय द्वारा किसी भी बहाने से त्यागा नहीं जा सकता। भारत का संविधान,1950- अनुच्छेद 141- न्यायिक अनुशासन उत्तरदाताओं को अन्तर्गत धारा

498-ए और 304-बी भा.दं.सं. में अभियोजित किया गया। विचारण न्यायालय द्वारा उन्हें दोषमुक्त किया गया। अपीलार्थी राज्य ने अपील की अनुमति हेतु अन्तर्गत धारा 378(1) दं.प्र.सं. में प्रार्थना पत्र पेश किया। उच्च न्यायालय द्वारा भी खारिज किया गया, इसलिये वर्तमान अपील की अनुमति प्रदान की गयी और मामला उच्च न्यायालय को प्रेषित किया गया। न्यायालय ने निर्धारित किया-

1.1- विवादित आदेश व्यावहारिक रूप से बिना कारण बताये था। उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के खिलाफ अपील की अनुमति नहीं देने का कोई कारण नहीं दिया और ऐसा लगता है कि इस तथ्य से पूरी तरह अनजान थे कि इस तरह के इंकार से अपीलीय मंच द्वारा बरी किये जाने के आदेश की बारीकी से जांच, हमेशा के लिये खाे दिया है, जिस तरीके से बरी किये जाने के आदेश की अपील को उच्च न्यायालय द्वारा निपटा गया है, उसमें उच्च न्यायालय द्वारा बहुत छोड दिया गया है, जो वांछित था।

1.2 कारण- किसी आदेश में स्पष्टता लाते है साफ तौर पर न्याय पर विचार करते हुये उच्च न्यायालय को निर्धारित करना चाहिये था कि वह इसके कारणों को बताये, चाहे इसके कारण कितने ही संक्षिप्त क्यो न हो। यह सूचक है मस्तिष्क के प्रयोग का। इससे भी अधिक जब उनके आदेश आगे की चुनौतियो के लिये पथ प्रदर्शक हो। कारण के

बिना उच्च न्यायालय का आदेश संपोषणीय नहीं है, किसी भी निष्कर्ष के लिये कारण अति आवश्यक है, कारण के बिना वह निर्जीव हो जाता है।

(पैरा 6 और 7)(277 जी.एच.,278-ए.सी.)

उत्तर प्रदेश राज्य बटटन और अन्य,2001(10) एस.सी.सी. 607, महाराष्ट्र राज्य बनाम बिटठल राव प्रीतीराव चव्हाण,ए.आई.आर.1982,1982 एस.सी. 1215,जवाहर लाल सिंह बनाम नरेश सिंह और अन्य 1985(2) एस.सी.सी 222 राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य और अन्य 2003(7) सुप्रीम 152 पर भरोया किया गया।

1.3 कारण और मन के बीच जीवंत संबंध है। निर्णय लेने वाला विचाराधीन विवाद और निर्णय या निष्कर्ष पर पहुचे। कारण अवश्य प्रतिस्थापित करे। कारण अभिलिखित किये जाने पर जोर दिये जाने का कारण यह है कि यदि निर्णय "अस्पष्ट निर्णय" को प्रकट करता हैं। यह अपनी खामोशी से न्यायालयों के लिये अपनी अपील का निष्पादन करना लगभग असंभव बना सकता है या न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करना निर्णय की वैधता का निर्णय लेना। तर्क का अधिकार एक मजबूत न्याय प्रणाली का अनिवार्य हिस्सा है, कम से कम न्यायालय के समक्ष मन के अनुप्रयोग को इंगित करता है। एक अन्य तर्क यह है कि प्रभावित पक्ष जान सकता है कि निर्णय उनके खिलाफ क्यो गया है।

प्राकृतिक न्याय की हितकारी आवश्यकताओ में से एक है कि आदेश के कारणों को बताया जाये, दूसरे शब्दो में बोलना "अस्पष्ट निर्णय"।

आम तौर पर न्यायिक या अर्ध न्यायिक के साथ बेमेल प्रदर्शन (पैरा-8)(278-ई, एफ,जी,एच,279-ए) 276

1- उडीसा राज्य बनाम धनीराम लुहार, 2004(5) एस.सी.सी.-568 पर भरोसा किया गया।

बरीन बनाम समामेलित अभियांत्रिकी संघ, 1971(1) ए.आई.आर. 1148

एलेक्जेंडर मशीनरी(डडली) लिमिटेड बनाम केरबटरी 1974 आई.सी.आर.

120(एन.आई.आर.सी.) संदर्भित

2- प्रकरणों में कारणों को इंगित करने की आवश्यकता को न्यायिक रूप से अनिवार्य माना गया है। न्यायिक अनुशासन के तहत कानून की घोषणा सभी न्यायालयों या प्राधिकरणों पर बाध्य है, चाहे वह किसी भी राज्य का सर्वोच्च न्यायालय हो, उन्हें किसी भी बहाने से त्यागा नहीं जा सकता।

भारत के संविधान 1950 के अनुच्छेद 141 (पैरा-6)(278-बी,सी)

आपराधिक अपील अधिकारिताः- आपराधिक अपील सं. 361/2008

राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ, जयपुर के एस.बी. आपराधिक अनुमति अपील संख्या 193/2006 में अंतिम आदेश और निर्णय दिनांक 31.07.2006 से।

अपीलार्थी की ओर से अरूणेश्वर गुप्ता

निर्णय दिया गया।

जस्टिस अरिजीत पासायत

1- अनुमति प्रदान की गयी।

2- इस अपील में चुनौती राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को है, जिसमें आपराधिक संहिता की धारा 378(1)के संदर्भ में अपील करने की अनुमति देने के लिए दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया था। प्रक्रिया,1973 (संक्षेप में" सी.आर.पी.सी.")

3 -पृष्ठभूमि तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैंः-

प्रतिवादी को भारतीय दंड संहिता, 1860(संक्षेप में "आईपीसी") की धारा 498(ए) और 304(बी) के तहत दंडनीय अपराधों के कथित कमीशन के लिये मुकदमे का सामना करना पडा। अभियोजन पक्ष का कहना था कि कम दहेज लाने पर दी जाने वाली प्रताडना के कारण उसकी हत्या कर दी गई। उसका शव आरोपियों के कुएं में मिला।

शिकायतकर्ता का मामला था कि दहेज के लिए उसकी हत्या कर कुएं में फेंक दिया गया, आरोप तय किए गए आ ैर आरोपी व्यक्तियों को मुकदमे का सामना करना पडा।

विचारण न्यायालय ने बरी करने का निर्देश दिया। इसके बाद, जैसा कि उपर बताया गया है, अपीलकर्ता- राज्य ने अनुमति देने के लिए एक आवेदन दायर दायर किया, जिसे अस्वीकार कर दिया गया। अपीलकर्ता का पक्ष यह था कि संक्षिप्त बर्खास्तगी कानूनी में संपोषणीय नहीं है। प्रतिवादी-अभियुक्त् की ओर से कोई उपस्थित नहीं है।

4- संहिता की धारा 378 दोषमुक्ति की स्थिति में अनुमति देने की उच्च न्यायालय की शक्ति से संबंधित है। धारा 378 की उप धारा (1)और (3) इस प्रकार पढेः" 378(1) उप धारा (2) में अन्यथा प्रदान किए गए को छोडकर और उप-धारा (3) और(5) के प्रावधानों के अधीन, राज्य सरकार, किसी भी मामले में, लोक अभियोजक को अपील प्रस्तुत करने का निर्देश दे सकती है। उच्च न्यायालय के अलावा किसी अन्य न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपील आदेश या पुनरीक्षण में सत्र न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में।

(3) उप-धारा(1) या उप-धारा (2) के तहत किसी भी अपील पर उच्च न्यायालय की अनुमति के बिना विचार नहीं किया जाएगा।

5- कम से कम यह कहना कि आदेश व्यावहारिक रूप से अनुचित है।

6- सरकारी गवाहों की गवाही और प्रदर्शित दस्तावेजो की पृष्ठभूमि में अभियुक्त की स्वीकारोक्ति के प्रभाव को अपील में निर्णय की आवश्यकता पडी। उच्च न्यायालय ने बरी किये जाने के खिलाफ अपील दायर करने की अनुमति देने से इन्कार करने का कोई कारण नहीं बताया गया है, ओर ऐसा लगता है कि वह इस तथ्य से पूरी तरह से अनभिज्ञ है कि इस तरह के इन्कार से, अपीलीय मंच द्वारा बरी करने के आदेश की बारीकी से जांच की गई है। एक बार और हमेशा के लिए खो गया,उच्च न्यायालय द्वारा बरी किए जाने के विरूद्घ अपील पर जिस तरह से कार्यवाही की गई है, उसमें बहुत कुछ अपेक्षित नहीं है। कारण किसी क्रम में स्पष्टता लाते हैं। न्याय के स्पष्ट विचार पर, उच्च न्यायालय को अपने कारणों को सामने रखना चाहिए था, भले ही वह अपने आदेश में संक्षिप्त क्यों न हो, अपने दिमाग के प्रयोग का संकेता देता हो, और भी अधिक जब इसका आदेश चुनौती के आगे के अवसर के लिए उत्तरदायी हो। कारणों की अनुपस्थिति ने उच्च न्यायालय के आदेश को संपोषणीय नहीं बना दिया है। उत्तरप्रदेश राज्य बनाम बटटन और अन्य (2001(10)एससीसी 607) में भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया गया। लगभग दो दशक पहले महाराष्ट्र राज्य बनाम विटठल राव प्रीतिराव चव्हाण (एआईआर 1982 एस सी 1215) में

अनुमति के अनुदान के लिए एक आवेदन से निपटने के दौरान बोलने के आदेश की वांछनीयता पर प्रकाश डाला गया था। एेसे मामलो में कारण बताने की आवश्यकता को न्यायिक रूप से अनिवार्य माना गया है। जवाहर लाल सिंह बनाम नरेश सिंह और अन्य के मामले में इस दृष्टिकोण को दोहराया गया था।(1987(2)एससीसी 222)। इस न्यायालय द्वारा कानून की घोषणा का पालन करने के लिये न्यायिक अनुशासन को, किसी भी प्राधिकारी या न्यायालय द्वारा किसी भी बहाने से नहीं छोडा जा सकता है, चाहे वह राज्य का सर्वोच्च न्यायालय ही क्यो न हो, भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 141(संक्षेप में) से बेखबर " संविधान")

7- तर्क हर निष्कर्ष की धड़कन है और इसके बिना यह बेजान हो जाता है।(देखें राजकिशोर झा बनाम बिहार राज्य और अन्य)। (2003(7) सुप्रीम 152)।

8- प्रशासनिक आदेशों के संबंध में भी, ब्रीन बनाम अमलगमेटेड इंजीनियरिंग यूनियन (19171(1) एआईआर 1148) में लाॅर्ड डेनिंग एमआर ने कहा, "कारण बताना अच्छे प्रशासन के बुनियादी सिद्घान्तो में से एक है"। अलेक्जेंडर मशीनरी (डूडले) लिमिटेड बनाम क्रेबट्री (1974 आईसीआर 120) (एनआईआरसी) में यह देखा गया: "कारण बताने में विफलता न्याय से इन्कार करने के बराबर है। कारण निर्णय लेने वाले

के दिमाग से संबंधित विवाद और उस पर आए निर्णय या निष्कर्ष के बीच जीवंत संबंध है।", यह अपनी चुप्पी से, इससे न्यायालयों के लिए अपना अपीलीय कार्य करना या निर्णय की वैधता तय करने में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करना लगभग असंभव हो जाता है। तर्क का अधिकार एक सुदृढ न्यायिक प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है; कारण कम से कम न्यायालय के समक्ष मामले पर दिमाग लगाने का संकेत देने के लिए पर्याप्त है। दूसरा तर्क यह है कि प्रभावित पक्ष यह जान सकता है कि निर्णय उसके विरूद्घ क्यो गया है। प्राकृतिक न्याय की हितकारी आवश्यकताआेें में से एक दिए गए आदेश के कारणों को स्पष्ट करना है; दूसरे शब्दों में, बोलना। "अस्पष्ट निर्णय" आम तौर पर न्यायिक या अर्ध न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत है। तर्क का अधिकार एक सुदृढ न्यायिक प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है; कारण कम से कम न्यायालय के समक्ष मामले पर दिमाग लगाने का संकेत देने के लिए पर्याप्त हैं। दूसरा तर्क यह हे कि प्रभावित पक्ष यह जान सकता है कि निर्णय उसके विरूद्घ क्यो गया है। प्राकृतिक न्याय की हितकारी आवश्यकताओ में से एक दिए गए आदेश के कारणों को स्पष्ट करना है; दूसरे शब्दों में, बोलना। "अस्पष्ट निर्णय" आमतोर पर न्यायिक या अर्ध न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत है। तर्क का अधिकार एक सुदृढ न्यायिक प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है; कारण कम से कम न्यायालय के समक्ष मामले पर दिमाग लगाने का संकेत देने के लिए

पर्याप्त है। दूसरा तर्क यह है कि प्रभावित पक्ष यह जान सकता है कि निर्णय उसके विरूद्‌घ क्यो गया है। प्राकृतिक न्याय की हितकारी आवश्यकताओ में से एक दिए गए आदेश के कारणों को स्पष्ट करना है; दूसरे शब्दों में बोलना। "अस्पष्ट निर्णय" आमतोर पर न्यायिक या अर्ध न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत है।

9- उपरोक्त स्थिति को उडीसा राज्य बनाम धनीराज लुहार (2004(5) एससीसी 568) में उजागर किया गया था।

10. इसलिए, उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है ओर इसे रद्द कर दिया जाता है, और मामले को उसके पास भेज दिया जाता है। उच्च न्यायालय इस मामले में नए सिरे से उठाएगा और कानून के अनुसार इसका निपटारा करेगा। लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के अपील की अनुमति दी जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी शैला फौजदार, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट,क्रम-5 कोटा द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।